THE TIMES OF INDIA

Date: 11-02-26

Our Own AI

India should aim for AI sovereignty, with AI models & data centres, to be immune to foreign pressure

TOI Editorials

You've heard the old joke about a famous billionaire walking into a bar? Delhi's hotels took it literally. For next week's India AI Impact Summit 2026, when Sundar Pichai, Sam Altman, Jensen Huang, and other tech royalty are around, they've jacked up rates to several times India's per capita GDP. So, rooms are priced out, but CEO wealth may still rub off on you in Delhi's bars and restaurants.

Remember, last Oct, Huang, along with chiefs of Samsung and Hyundai, bought everyone beer and fried chicken at a Seoul restaurant.

Jokes apart, this summit has a lot to do with chickens. As we've said before, a clear pecking order has emerged in AI, with US far ahead of everyone else. India may not have so many data centres, nor a lead in the LLM race, but it is a vital source of data, which is grist for the AI mill.

A combination of large population and cheap data has made India a Niagara of free training data for AI models, most of which aren't Indian. As a result, we remain spring chickens of AI while they've become mother hens.

If AI were merely a tool to write Valentine's notes and sketch pictures, this wouldn't be a concern. But AI is perhaps the most disruptive tech we have found so far. One of Anthropic's new tools can check legal contracts for loopholes in seconds. Other AI can diagnose patients equally quickly. On the battlefield, AI can identify and destroy targets. It's no toy, and therefore deserves attention as a national priority. Two key concerns at this point are 'sovereign AI' and 'AI sovereignty'.

Sovereign AI is all the infra and tech – data centres, AI models – that we as a nation control. Till our data flows out, is processed on servers located abroad, and all we see are results, we don't have sovereign AI. The country's defence capabilities, for example, cannot be built on this model. India has already begun work on a sovereign AI, but it needs to hurry up. AI sovereignty – the ultimate goal – will arise when all data in the system is subject to Indian laws, and govt and businesses know how AI models are processing it to arrive at results.

Not only defence, but critical fields like finance and healthcare also require AI sovereignty. They should be immune to foreign interference and disruption, whether wilful or accidental. The Delhi summit will hopefully lead to collaborations that speed up both aims.

THE HINDU

Date: 11-02-26

New beginnings

The end of START should prompt discussions on wider and equal terms

Editorial

On February 5, 2026, the 'New' Strategic Arms Reduction Treaty (START) expired. A symbol of an older era in global geopolitics, where the U.S. and the then Union of Soviet Socialist Republics were engaged in an escalating spiral of one-upmanship such as 'testing' mammoth nuclear weapons and space races, START represented a pivotal shift in how they approached nuclear competition — from unlimited accumulation towards negotiated reduction. It emerged from decades of arms control efforts and altered the trajectory of the Cold War's final years. The nuclear arms race that dominated the Cold War saw both superpowers accumulate massive arsenals. By the 1980s, they each possessed over 10,000 strategic nuclear warheads — the U.S. with a lopsided advantage. Earlier arms control measures such as the Strategic Arms Limitations Talks, in the 1970s, attempted to limit the growth of these arsenals, but were focused on capping numbers rather than reducing them.

START I negotiations began in 1982 and proved complex. The treaty was not signed until July 1991, just months before the Soviet Union's collapse. It represented the first agreement between the superpowers to actually reduce strategic nuclear arsenals rather than merely limit their growth. The treaty required each side to cut strategic warheads to 6,000 and reduce delivery systems proportionally. This was a significant symbolic and practical achievement — each country would have roughly 30% fewer warheads than existing agreements permitted. Later agreements built on START's framework and reduced deployable warheads to 1,700-2,200 a side, and the New START Treaty (2010) limited each side to 1,550 deployed strategic warheads. Each represented further progress down from Cold War peaks. The New START, with its 15-year lifespan, ought to have been replaced with more ambitious outcomes. But given that global geopolitics seems to be receding into imperialist structures — mercantilist tariff systems and a craving for territories — it is unsurprising that arms-race doctrines too will be resuscitated. U.S. President Donald Trump has stated that any future arms control must include China, given its growing nuclear stockpile, signalling that the U.S. will not be bound by limits if other major powers (such as China) are free to build up theirs. The end of START may have serious consequences for global agreements, such as the Non-Proliferation Treaty and the Comprehensive Nuclear-Test-Ban Treaty. They are both noble in theory but the first is discriminatory in the way it seeks to rid the world of nuclear weapons. The end of START is an opportunity to restart discussion on more equal terms.

दैनिक जागरण

Date: 11-02-26

एआई के खतरों से सावधान रहें

अजय कुमार, (लेखक पूर्व रक्षा सचिव एवं यूपीएससी के चेयरमैन हैं।)

पिछले एक दशक के दौरान दुनिया जितनी तेजी से बदली है, उसे देखते हुए अगले दस-बीस वर्षों के संभावित परिवर्तनों की थाह लेना आवश्यक हो गया है। मानव इतिहास के अधिकांश दौर में अभाव जैसे पहलू ने ही सभ्यताओं का तानाबाना रचा है। फिर चाहे यह खानपान का अभाव हो, जमीन, श्रम, पूंजी या कालांतर में ज्ञान का। हमारे आर्थिक सिद्धांतों का उद्भव एवं राजनीतिक संस्थानों का विकास भी अभाव प्रबंधन पर केंद्रित रहा।

मशीनी कौशल यानी एआइ में इस पारंपरिक परिदृश्य को पलटने की क्षमता है। यदि बीसवीं सदी अभावों से पार पाने से जुड़ी थी तो आने वाला दशक अधिशेष के साथ संतुलन की चुनौती के नाम हो सकता है। नए परिदृश्य में तकनीक जितनी तेजी से आगे बढ़ रही है, उस लिहाज से हमारी संस्थाएं पिछड़ती जा रही हैं। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि उन नीतिगत उपायों पर विचार किया जाए जो एआइ से उत्पन्न उथल-पुथल से निपटने में कारगर साबित हो सकें।

पारंपरिक अर्थशास्त्र में उत्पादन के चार प्रमुख कारक-श्रम, पूंजी, भूमि और तकनीक माने गए हैं। तकनीक ने हमेशा श्रम को सहयोग प्रदान किया है। प्रत्येक तकनीकी संक्रमण उत्पादकता एवं पारिश्रमिक बढ़ाने के साथ ही मांग के विस्तार और नई नौकरियों का माध्यम बना है। इससे कुछ असुविधा होती भी थी तो बस तात्कालिक ही न कि स्थायी, मगर एआइ से यह रुझान पलट सकता है। पहली बार तकनीक सीधे तौर पर श्रम को प्रतिस्थापित करती दिख रही है।

न केवल शारीरिक श्रम, बल्कि बौद्धिक, पेशेवर और रचनात्मक कामकाज के मामले में भी एआइ प्रभुत्व दिखा रही है। एआइ के साथ उत्पादकता तो बढ़ रही है, पर रोजगार सृजन उस हिसाब से नहीं हो रहा है। इससे साझा समृद्धि की राह प्रशस्त होने से रही। यानी विषमता बढ़ेगी। प्रकृति और स्वरूप में भी एआइ पिछली तकनीकों की तुलना में अलग है। इसका कोई प्रतिरूप एक बार आकार लेने पर यह सीमांत लागत को शून्य तक करने में सक्षम है। यह स्वाभाविक रूप से एकाधिकार की स्थिति निर्मित करता है। कुछ देशों की चुनिंदा कंपनियों द्वारा विशेष प्रतिरूपों में महारत हासिल करने से यह झलकता भी है।

तमाम विश्लेषकों को आशंका सता रही है कि एआइ बड़े स्तर पर हलचल मचा सकती है। यह मानव समाज के संतुलन को भी प्रभावित करने में सक्षम है। आज उत्पादकता और क्षमताएं निरंतर बढ़ रही हैं। वस्तुएं सस्ती हो रही हैं। सेवाओं का स्तर सुधरा है। भौतिक जीवन की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। एआइ को सफलतापूर्वक अपनाने वाले देश तेज आर्थिक

वृद्धि कर रहे हैं। स्वास्थ्य सेवाओं में जबरदस्त सुधार हुआ है। जीवन प्रत्याशा बढ़ी है और बीमारियों पर बोझ घट रहा है। जीवन के विस्तार और काम का दायरा सिकुड़ने पर जननांकीय लाभांश अपने अर्थ खो देता है।

इस परिदृश्य में विदेश से भेजी जाने वाली धनराशि पर निर्भर राष्ट्र-समाज समस्याओं का सामना करते हैं। तब गरिमा और आजीविका के आधार के रूप में रोजगार का विचार संकट का शिकार होने लगता है। संसाधनों का संकेंद्रण भी एआइ के मोर्चे पर पैदा होने वाली एक और समस्या है। ऐसे में संसाधनों के पुनर्वितरण के लिए कोई कारगर नीतिगत उपाय खोजना ही होगा। इसके अभाव में व्यापक आर्थिक दुष्प्रभावों का सामना करना पड़ सकता है।

एआइ के चलते सीखने-समझने की क्षमताओं पर भी संकट मंडराता दिख रहा है। जब मशीन ही फैसले लेने में भूमिका निभाने लगेगी तो लोगों में सीखने के प्रति झुकाव घटने का अंदेशा बढ़ता है। इतिहासकार डेविड रोकलिन ने यह रेखांकित भी किया था कि आटो-पायलट मोड पर अत्यधिक निर्भरता संकट के समय पायलटों के हाथ-पांव फुला देती है। बड़ा खतरा यह नहीं कि मशीन किसी इंसान की भांति काम करे, बल्कि यह खतरा कहीं विकराल होगा कि इंसान ही मशीन की तरह व्यवहार करने लगे।

एआइ की वजह से फर्जी सूचनाओं और तमाम संदिग्ध सामग्री का सैलाब भी संकट बढ़ा रहा है। इससे भरोसे की भावना पर आघात पहुंचा है। सत्य और मिथ्या को लेकर ऐसा जाल बुना जा रहा है कि लोग भ्रमित हो रहे हैं। एआइ पर पकड़ रखने वाले और ताकतवर बनने की राह पर हैं। इसके दम पर नव-धनकुबेरों का उभार हो रहा है।

भू-राजनीतिक संदर्भ में भी एआइ विषमता बढ़ा रही है, क्योंकि आधुनिक तकनीक से वंचित देश स्वत: पिछड़ते जाएंगे। किसी देश की संप्रभुता पर किसी अन्य देश से संचालित हो रहे एलगोरिदम से ग्रहण लग सकता है। इस सबके बावजूद अगर सही नीतिगत उपाय किए जाएं तो एआइ बहुत सकारात्मक परिवर्तन भी कर सकती है। इसके लिए एआइ को तकनीकी उपकरण से अधिक सभ्यतागत शक्ति के रूप में देखना होगा। एआइ का उपयोग मानव की जगह लेने के बजाय उसकी क्षमताओं को बढ़ाने पर केंद्रित होना चाहिए।

एआइ उन तमाम समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है, जिसके लिए असाधारण मानवीय प्रयासों की आवश्यकता पड़ती है। जैसे कि बाहरी-अंतरिक्ष में कोई नया मोर्चा खोलना, गहरे समुद्र या पृथ्वी की जटिल परतों के रहस्यों को सुलझाना। इससे कई ग्रहों पर मानवीय जीवन को संभव बनाया जा सकता है। हम प्रकृति को बेहतर तरीके से समझकर उसके कुशल प्रबंधन के मंत्र समझ सकते हैं। तथ्यों एवं सूचनाओं के सत्यापन के लिए भी इसकी सेवा कारगर होगी।

यह स्वीकारने में कोई संदेह नहीं कि एआइ कितनी भी क्षमताएं अर्जित कर ले, लेकिन उसका प्यार, देखभाल, समानुभूति और नैतिक दायित्वों जैसी मानवीय भावनाओं से युक्त होना संभव नहीं है। एआइ से मरीज का उपचार भले ही बेहतर हो जाए, लेकिन प्यार-दुलार और देखभाल प्रियजनों से ही संभव है। हमें समझना होगा कि एआइ कोई प्रतिस्पर्धी लाभ नहीं, बल्कि एक साझा दायित्व है। वसुधैव कुटुंबकम् का भारतीय विचार अब दर्शन के दायरे से निकलकर अस्तित्व की रणनीति का हिस्सा बन चुका है। ऐसे में, भारत अपनी सभ्यतागत गहराई और विश्वसनीयता के माध्यम से नए शासकीय ढांचों के लिए वैश्विक एआइ मानदंडों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 11-02-26

प्रतिद्वंदिता पर आधारित एक नई दुनिया

सुनीता नारायण, (लेखिका सेंटर फॉर साइंस ऐंड एनवायरमेंट से जुड़ी हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

'पुराना जमाना खत्म हो रहा है, और नया जमाना आने के लिए जूझ रहा है। अब राक्षसों का समय है।' इटली के दार्शनिक एंटोनियो ग्राम्शी का यह उद्धरण आज राजनीतिक-नीति जगत में अक्सर दोहराया जाता है। यह गलत नहीं है। जनवरी 2026 में मौजूदा विश्व व्यवस्था में और अधिक उथल-पुथल तथा उतार-चढ़ाव देखने को मिला। विश्व आर्थिक मंच (डब्ल्यूईएफ) में अपने संबोधन में कनाडा के प्रधानमंत्री मार्क कार्नी ने कुछ सचबयानी की। उन्होंने कहा कि पुरानी नियम आधारित विश्व व्यवस्था का अंत हो चुका है और अब वह वापस नहीं आने वाली है।

बात को जरा साफ-साफ समझते हैं: अब स्थापित रूप से यह दुनिया 'ताकतवर लोगों' की दुनिया है। इसमें हर देश को अपने आर्थिक भविष्य की राह, अपने गठबंधन और अपनी तरक्की का रास्ता खुद तय करना होगा। इसके निहितार्थ और भी मायने रखते हैं। चीन और अमेरिका के बीच श्रेष्ठता की होड़ नए क्षेत्रीय तनावों को जन्म देगी। जैसा कि हम वेनेजुएला और ग्रीनलैंड में देख रहे हैं। तकनीक के क्षेत्र में भी ऐसा ही होगा। उदाहरण के लिए इलेक्ट्रिक वाहनों और नवीकरणीय ऊर्जा बनाम दहन इंजन तथा तेल, गैस और कोयला आदि के क्षेत्र में।

राष्ट्रों के बीच की इस तीव्र प्रतिद्वंद्विता में वैश्विक सहयोग परास्त हो रहा है, जबकि जलवायु परिवर्तन जैसी अस्तित्वगत चुनौतियों से निपटने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। इसका संबंध कच्चे माल की आपूर्ति श्रृंखलाओं पर नियंत्रण से भी है। दुर्लभ खनिजों से लेकर कोयला और तेल तक ऐसे तमाम क्षेत्र हैं। इसका संबंध प्रसंस्करण क्षमता और तकनीक पर नियंत्रण से भी है। तेल या प्राकृतिक गैस पर निर्भर देशों और बिजली आधारित ऊर्जा पर निर्भर देशों के बीच का विभाजन स्पष्ट है और यह संघर्ष अत्यधिक कठोर है। जलवायु परिवर्तन यहां एक संपार्श्विक क्षति यानी कोलैटरल डैमेज के रूप में सामने आ रहा है।

सबसे बड़ी विडंबना यह है कि आज की भू-राजनीति में आर्कटिक (और ग्रीनलैंड) क्यों महत्त्वपूर्ण हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण, दुनिया का यह 'रेफ्रिजरेटर' पिघल रहा है, और महाद्वीपों को जहाज पृथ्वी के 'शीर्ष' से होकर तेजी से पार कर सकते हैं। ये मार्ग रणनीतिक हैं क्योंकि वे रूस और चीन को पश्चिमी गोलार्ध तक पहुंचने में सहायता प्रदान करते हैं। पीछे हटती बर्फ़ इलाके के तेल और खनिज संपदा को भी दोहन के लिए उजागर करेगी। इस बीच नुकसान यह हो रहा है कि दुनिया का यह रेफ्रिजरेटर मौसम प्रणालियों को नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन इस

वाणिज्यिक विश्व व्यवस्था में, यह सब अब महत्वहीन प्रतीत होता है। यहां हर चीज का संबंध धन कमाने से है। चाहे इसके लिए वैश्विक स्तर पर व्यापक हानि और विनाश ही क्यों न हो रहा हो।

नए युग की हरित तकनीक वाली दुनिया के लिए खनिजों के उत्खनन का प्रश्न है। यह भी कि इसका क्षेत्रीय खोज तथा पर्यावरण पर क्या प्रभाव होगा। हाल तक यह माना जाता था कि दुनिया कोयला, लौह-अयस्क और बॉक्साइट जैसे खनिजों की मांग के चरम तक पहुंच चुकी है। लेकिन विद्युतीकरण, हरित प्रौद्योगिकी और आर्टिफिशल इंटेलिजेंस अधोसंरचना की ओर बढ़ते प्रयासों के साथ अब अनुमान है कि अगले दशक या उससे अधिक में वैश्विक तांबे की मांग दोगुनी हो जाएगी। जिन देशों के पास सबसे बड़े तांबे के भंडार हैं, उदाहरण के लिए पेरू, चिली और कांगो गणराज्य आदि, वे अब केंद्र में हैं।

चीन वैश्विक तांबे का लगभग 50 फीसदी प्रसंस्करण और परिष्करण करता है। मांग बढ़ने के साथ, और अधिक खदानें खुलेंगी, अक्सर घने जंगलों और जैव-विविधता से भरपूर क्षेत्रों में, और तांबे के स्मेल्टरों की आवश्यकता होगी। ऐसी सुविधा जिनमें प्रदूषण नियंत्रण के लिए भारी निवेश की जरूरत होती है। यही स्थिति दुर्लभ खनिजों, जैसे लिथियम से लेकर ग्रेफाइट तक, के लिए भी है।

चीन न केवल इन आपूर्ति श्रृंखलाओं को सुरक्षित करने में भारी बढ़त रखता है, बल्कि वह ग्रीन टेक्नॉलजी में भी अग्रणी है। अन्य देश अब नई खदानें खोजने और समझौते करने की होड़ में हैं। इसका हमारे भविष्य पर क्या असर होगा, यह आज की झड़पों में ही दिखाई देने लगा है। मेरे विचार में, दो व्यापक प्रश्न हैं जो हमारी वास्तविक दुनिया में सामने आएंगे।

पहला, जब देश वैश्विक व्यापार को 'ऑन-शोरिंग' के लिए पुनर्गठित करेंगे। यानी आपूर्ति श्रृंखलाओं को सुरक्षित करने और औद्योगीकरण को पुनर्जीवित करने के लिए घरेलू उत्पादन बढ़ाएंगे तो क्या समृद्ध देश, जिन्होंने पहले पर्यावरण और श्रम की ऊंची लागतों के कारण 'ऑफ-शोरिंग' को प्राथमिकता दी थी, अब उन लागतों को घरेलू स्तर पर स्वीकार करेंगे? या वे सभी के लिए मानकों को पुनर्गठित करेंगे और दुनिया भर में उत्पादन लागत बढ़ाएंगे?

यूरोपीय संघ की दक्षिण अमेरिका के साथ मर्कोसुर साझेदारी का उसके किसानों द्वारा खाद्य-सुरक्षा मानकों के कारण विरोध किया जा रहा है। इसी तरह, कार्बन सीमा समायोजन प्रणाली (सीबीएएम) को आगे बढ़ाया जा रहा है, भले ही यह उभरती दुनिया के उद्योगों में कार्बन घटाने की लागत को बढ़ा देगा।

दूसरा प्रश्न यह है कि यह विशाल अंतर ग्रीन टेक्नॉलजी की वृद्धि के लिए क्या मायने रखेगा, जो जलवायु परिवर्तन के असर को सीमित करने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। विश्व आर्थिक मंच में भी यह विरोधाभास स्पष्ट था। एक ओर अमेरिकी नेतृत्व में जीवाश्म ईंधन का दबाव था, तो दूसरी ओर चीन के उप-प्रधानमंत्री विभिन्न देशों से 'हरित अधोसंरचना, हरित ऊर्जा, हरित खनिज और पर्यावरण के अनुकूल वित्त' पर सहयोग करने का आग्रह कर रहे थे।

देश घरेलू और आयातित ऊर्जा आपूर्ति के बीच, और प्रतिस्पर्धी गठबंधनों के बीच फंसे हुए हैं, जिन पर उन्हें अपनी भविष्य की आपूर्ति श्रृंखलाओं के लिए भरोसा करना होगा। साथ ही यह प्रश्न भी है कि देश घरेलू स्तर पर क्या उत्पादन करेंगे और क्या वे चीनी प्रतिस्पर्धा के सामने अपने उद्योगों को बनाए रख पाएंगे। पिछले वर्ष चीन ने 1.2 लाख करोड़ डॉलर का रिकॉर्ड व्यापार अधिशेष दर्ज किया।

वह लगभग हर चीज का उत्पादन और आपूर्ति अधिकांश देशों से सस्ते दरों पर कर सकता है। इसका विभिन्न देश की घरेलू विनिर्माण और आर्थिक वृद्धि की योजनाओं पर क्या असर होगा? एक नई दुनिया आ रही है। हमें ऐसा उत्तर चाहिए जो यह सुनिश्चित करे कि यह दुनिया लोगों और पृथ्वी दोनों के लिए बेहतर हो।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 11-02-26

अविश्वास प्रस्ताव

संपादकीय

वर्तमान लोकसभा अध्यक्ष के खिलाफ विपक्षी सांसदों द्वारा पेश अविश्वास प्रस्ताव केंद्र सरकार के लिए न सही, पर देश की राजनीति के लिए बहुत चिंताजनक है। कुल 118 विपक्षी सांसदों के हस्ताक्षर वाला यह प्रस्ताव कांग्रेस सांसद के सुरेश, गौरव गोगोई और मोहम्मद जावेद ने लोकसभा महासचिव उत्पल कुमार सिंह को सौंपा है और इस पर आगे की कार्यवाही शुरू हो गई है। लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला ने अविश्वास प्रस्ताव पेश होने के एक घंटे के भीतर ही लोकसभा सचिवालय से अनुरोध किया है कि आगे की प्रक्रिया को पूरा किया जाए। हालांकि, संख्या बल में सरकार आगे है और ओम बिरला के पद पर किसी तरह का खतरा नहीं है। विपक्षी सांसदों की एक बड़ी शिकायत है, लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी को अपना भाषण पूरा न करने देना। दूसरी शिकायत है, आठ विपक्षी सांसदों का निलंबन। लोकसभा अध्यक्ष पर लोकसभा की कार्यवाही में स्पष्ट रूप से पक्षपातपूर्ण व्यवहार का आरोप लगाया गया है।

वैसे तो विपक्षी सांसदों की शिकायतों पर सत्ता पक्ष के नेता अपना जवाब देते रहे हैं, पर अब उन्हें ज्यादा गंभीरता से इस प्रस्ताव का सामना करना पड़ेगा। अब सत्ता पक्ष या लोकसभा सचिवालय को भी आंकड़ों के आधार पर बताना होगा कि संसद सत्र में विपक्षी दलों के सांसदों को कितना वक्त बोलने के लिए दिया गया है? विपक्षी दलों के सदस्यों को क्या बोलने से रोका गया है? सत्ता पक्ष की कमियों पर उंगली रखना विपक्षी सांसदों का काम है, पर कमियों को दर्ज कराते समय उससे जुड़े प्रामाणिक तथ्य रखना जिम्मेदारी है। अक्सर देखा गया है कि राजनीति करते हुए हमारे सांसद सड़क और संसद का भेद भूल जाते हैं। बीते वर्षों में विरोध के लिए विरोध की जैसी राजनीतिक परंपरा जड़ें जमा चुकी है, क्या यह अविश्वास प्रस्ताव उसकी अगली कड़ी नहीं है? अभिव्यक्ति अपने देश में बुनियादी लोकतांत्रिक अधिकार है, पर गलत अभिव्यक्ति पर रोक के लिए कानून भी है। क्या

आज देश में कोई ऐसा राजनीतिक खेमा है, जहां से कभी गलतबयानी नहीं होती है? जब देश तरक्की की ओर उम्मीद भरी निगाह से देख रहा है, तब राजनीति समग्रता में अपने व्यवहार से एक आम भारतीय को निराश ही कर रही है। संसद में परस्पर समन्वय से ही यथोचित कार्य संभव है और समन्वय के लिए समझदारी सबसे जरूरी है।

अविश्वास प्रस्ताव तो एक पड़ाव भर है, यह गुजर जाएगा। कुछ पलटकर देखें, तो दिसंबर 2024 में राज्यसभा के तत्कालीन सभापति-उप-राष्ट्रपति जगदीप धनखड़ के खिलाफ भी अविश्वास प्रस्ताव पेश हुआ था। संख्या बल धनखड़ के

पक्ष में था, लेकिन अंततः वह इतने कमजोर हो गए कि इस्तीफा देना पड़ा। वैसे, गौर करने की बात है, धनखड़ की तुलना में ओम बिरला को सदन चलाने का ज्यादा अनुभव है। अपने देश में लोकसभा अध्यक्ष के रूप में बलराम जाखड़ सर्वाधिक नौ वर्ष से ज्यादा समय तक पद पर रहे थे और उनके बाद ओम बिरला का ही स्थान है। यह अविश्वास प्रस्ताव उनके लिए भी निर्णायक है। बेशक, लोकसभा अध्यक्ष होना बड़ी चुनौती है। सदन की सम्मिलित भलमनसाहत से ही लोकसभा अध्यक्ष शिकायतों को दूर करते हुए सदन चलाते हैं। यह भलमनसाहत बनी रहनी चाहिए, पर दुर्भाग्य है कि आज की राजनीति में यह निरंतर घट रही है। अब अविश्वास प्रस्ताव प्रकरण में देखने वाली बात यह होगी कि हमारे सांसद परस्पर समन्वय से इस गिरावट को कहां रोकेंगे और देश को क्या संदेश देंगे?